परमेश्वर का मार्ग

जिसमें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दरस का स्वाद आता है, ऐसे आनन्द के वेदनसहित मैं अपने आत्मा को प्रत्यक्ष जानता हूँ। यह जैन परमेश्वर का मार्ग है। वर्तमान में विदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान साक्षात् अरिहंतपद में विराजते हैं। इन्द्र व गणधर नतमस्तक होकर बहुत विनयपूर्वक उनकी दिव्यध्वनि सुनते हैं। यह मार्ग उस दिव्यध्वनि में भगवान के द्वारा कहा गया है।

व्रत करो, दया पालो, दान करो, यात्रा करो इत्यादि वीतराग जैनमार्ग नहीं है। क्या ऐसा मार्ग भगवान कहते होंगे? अरे ! ऐसा तो बाल गोपाल कुम्भार आदि भी कहते हैं अर्थात् ऐसा उपदेश तो कोई भी दे सकता है, इसमें भगवान के द्वारा कहने जैसी क्या बात है? भाई ! इस जैनमार्ग की बात, मोक्षमार्ग की बात महाभाग्यशालियों को सुनने को मिलती है।

यहाँ आचार्यदेव छद्मस्थदशा में सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीवों को कैसा अनुभव होता है ह्न यह बताते हुए कहते हैं कि मैं चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ। अहाहा ! मैं त्रिकाली ज्ञानसत्त्व, सर्वज्ञस्वभाव, ज्ञ भाव, एक ज्ञायकभावस्वरूप चैतन्यमात्र जलहल ज्योति हूँ, राग व पर मैं नहीं हूँ। एक समय की प्रगट पर्याय जितना भी मैं नहीं हूँ। तथा यह ज्ञायकस्वभावी आत्मा मेरे ही अनुभव से प्रत्यक्ष जाना जाता है। अहाहा ! यह ज्ञायकभावस्वरूप आत्मा मेरे स्वसंवेदन ज्ञान में प्रत्यक्ष जाना जाता है। इसका अनुभव करने में किसी परद्रव्य का या विकल्प का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो सीधा स्व तथा पर को अपने ज्ञान से ही जानता हूँ।

अरे ! अज्ञानी चौरासी लाख योनियों में चक्कर काटकर जन्म मरण के दु:ख भोग रहा है, मर रहा है। जीवती-ज्योति को इसने मार डाला है। यह चैतन्यमात्र ज्योतिरूप आत्मा मैं ही हूँ ह्न ऐसा स्वीकार नहीं करता; किन्तु एक समय की रागादि पर्यायस्वरूप ही मैं हूँ ह्न ऐसा जिसने माना उसने चैतन्यजीव का मानो घात ही कर दिया है; क्योंकि जीवित-सत् के सत्त्व से उसने इन्कार किया है। वस्तु तो वस्तु है, वस्तु का तो नाश नहीं होता; किन्तु पर्याय में चैतन्यजीव का घात हो जाता है।

ह्न प्रवचनरत्नाकर भाग-2, पृष्ठ-138-139

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 246 अंक : 6

प्रवचनसार पद्यानुवाद

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

स्वभाव से परिणाममय जिय अशुभ परिणत हो अशुभ।
शुभभाव परिणत शुभ तथा शुधभाव परिणत शुद्ध हो ।।09।।
परिणाम बिन ना अर्थ है अर अर्थ बिन परिणाम ना।
अस्तित्वमय यह अर्थ है बस द्रव्यगुणपर्यायमय ।।10।।
प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख ही शुभोपयोगी आतमा ।।11।।
अशुभोपयोगी आतमा हो नारकी तिर्यगकुनर।
संसार में रुलता रहे अर सहस्त्रों दुख भोगता ।।12।।
शुद्धोपयोगी जीव के है अनूपम आत्मोत्थसुख।
है नंत अतिशयवन्त विषयातीत अर अविछिन्न है ।।13।।
हो वीतरागी संयमी तपयुक्त अर सूत्रार्थ विद्।
शुद्धोपयोगी श्रमण के समभाव भवसुख-दुक्ख में ।।14।।
शुद्धोपयोगी जीव जग में घात घातीकर्मरज।
स्वयं ही सर्वज्ञ हो सब ज्ञेय को हैं जानते ।।15।।
त्रैलोक्य अधिपति पूज्य लब्धस्वभाव अर सर्वज्ञ जिन।
स्वयं ही हो गये तातैं स्वयम्भू सब जन कहें ।।16।।

आत्मा की उपासना कैसे होती है ?

पूज्यपाद आचार्य देवनन्दिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 22 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ।।22।।

मन की एकाग्रता द्वारा इन्द्रियों के समूह को वश करके अपने में अर्थात् आत्मा में स्थित आत्मा को आत्मा के द्वारा ही ध्याना चाहिये। यही आत्मा की उपासना है।

(गतांक से आगे)

अरे भाई ! जरा विचार तो कर कि तुझमें क्या अपूर्णता है; जो तुझे पर का आश्रय लेना पड़े ? तू तो पूर्णानन्दरूप मुक्ति का नाथ है ।

दिगम्बर सन्त पूज्यपादस्वामी जगत को हितकारी उपदेश देते हुए कहते हैं कि – हे भव्य जीवों ! तुम्हारा अनादि-अनंत शाश्वत अस्तित्व है। तुम ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों के पिण्डस्वरूप परमात्मा हो। उसमें एकाग्रता करने का साधन भी तुम्हारे स्वयं में ही है। अपनी आत्मा को प्राप्त करने का साधन शरीर की क्रिया में अथवा शुभाशुभ भावों में नहीं है; अतः चिन्ता छोड़कर तुम्हें आत्मस्वभाव के साधन में लगना चाहिए । अहा ! इन दो पंक्तियों में ही जैनदर्शन का सार भर दिया है।

प्रभु ! तुम तो पूर्णानन्द के नाथ हो। तुम्हें अपने में एकाग्रता करने के लिए पर के साधनों की आवश्यकता नहीं है। शरीरादि परद्रव्यों से भिन्न, ज्ञानावरणादि कर्मों से भिन्न तथा पुण्य-पाप से भी भिन्न आत्मा स्वयं अपने स्वभाव से परिपूर्ण है ह्न इस बात को स्वीकार करे तो अवश्य ही संवर-निर्जरा प्रकट हो।

भाई ! तू शांति एवं धैर्य रख ! तेरी प्रभुता तेरे ही पास है, तू स्वयं उसका उपयोग कर सकता है; अतः उसे जानकर स्वभाव का साधन कर। तुझे अन्य किसी के पास दीनता प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। तीनलोक के नाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवशरण में इस बात को कहते थे। उन्हीं की मार्ग परम्परा के अनुसार

मुनिराजों ने भी इसी बात को कहा हैं। उसका तू विश्वास कर ! अन्दर में प्रतीति कर !

शुभाशुभ भाव और उसमें हर्ष-शोक की कल्पनारूप विकारीभाव पर्याय में हैं; द्रव्यस्वरूप में नहीं तथा ये सभी ऊपर-ऊपर ही रहते हैं; स्वभाव में इनका प्रवेश नहीं है। परद्रव्य और परभाव में अपनापन मानना या उनका कर्त्ता बनना आत्मा के स्वभाव में नहीं है। स्व-पर को जाननेवाले त्रिकाल स्वभाव के सन्मुख दृष्टि करने का साधन भी स्वभाव में ही सदा विद्यमान है; अत: तुझे किंचित् भी पर के सहयोग की आवश्यकता नहीं है। स्वभाव के साधन में तो शुभभाव भी मददगार नहीं है। शुभभावों में ज्ञान का ज्ञेय बनने की शक्ति है और ज्ञान में उनको जानने की सामर्थ्य विद्यमान है; परन्तु उससे आत्मा का हित हो ह्न ऐसा कदापि नहीं है।

यहाँ मुनिराज मूल हित की बात कहते है कि ह्न भगवन् ! तू तो परिपूर्ण गुणों से भरा हुआ है। वर्तमान पर्याय एकांत परलक्षी होने से एकांत पर को ही जाननेवाली है; किन्तु यह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। परद्रव्यों को अपना मानना और उनका कर्त्ता बनना तुम्हारे स्वभाव में नहीं है। स्व को जाने बिना अकेले परपदार्थों को जानना भी तुम्हारी पर्याय का वास्तविक स्वरूप नहीं है। स्व-पर को जाननेरूप स्वभाव की ओर दृष्टि करते ही पर्याय में भी स्व-पर को जानने का स्वभाव प्रकट होता हैं। कहाँ भी है ह्न

स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी।
ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, निजरूपा पररूपा भासी॥

भगवान जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं कि जीव की स्व-परप्रकाशकशक्ति उसका स्वभाव है; इसलिये स्व-परप्रकाशक पर्याय प्रगट करने में तुझे कोई राग या निमित्तरूप साधन की जरूरत नहीं है। यदि तुझे भगवान की श्रद्धा हो तो भगवान यह कहते हैं कि तू अपने स्वरूप को समझकर उसे स्वीकार कर।

जिसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों रत्नत्रय है, उसीप्रकार अनन्तवीर्य, प्रभुता, विभुता, स्वच्छता आदि निर्मल पर्यायें भी रत्न हैं। आत्मा तो अनन्त रत्नों की बड़ी खान है; किन्तु फिर भी उसका हित तो स्वरूप की एकाग्रता द्वारा उन रत्नों को प्रकट करने से ही होगा। जैसे व्यापारी दीपावली के अवसर पर बहीखातों का मिलान करते हैं, वैसे ही जिन्हें अपना हित करना हो, उन्हें वीतराग की वाणी से अपने स्वरूप का मिलान करना चाहिए।

यहाँ शिष्य कहता है कि ह्न प्रभु ! हमें अपना हित करना है। अनंत भूतकाल में आज तक एकबार भी हमने अपना हित नहीं किया है; अत: अब अपना हित करने के लिए हम जागृत हुये हैं; कृपा कर हमें हमारा हित बताइए।

इस बात को स्पष्ट करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि तुम्हारा हित तुम्हारे में ही है। तुझमें करण नाम का गुण है। इस साधन से तू स्वयं का हित साध ले। भाई ! कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण आदि अनंत शक्तियाँ तेरे स्वभाव में विद्यमान हैं; उन्हें पर्याय में प्रगट करने के लिए तुझे अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं है; सिर्फ अभिप्राय में पहले यह निश्चित करना है कि मेरा हित मेरे स्वयं के अन्दर में विद्यमान है।

अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप निज आत्मा में एकाग्रता करने के लिए जीव स्वत: स्वयं में एकाग्रता कर अपनी सेवा करता है। उसमें उसे अन्य द्रव्यों के मदद की आवश्यकता नहीं है। अन्य द्रव्य ज्ञान में जानने में आए तो आए; परन्तु वे मुझे किंचित् मात्र भी हितकारक नहीं हैं - ऐसा पक्का निर्णय होना चाहिए। निर्णय की भूमिका यथार्थ हुए बिना हित का पंथ हाथ में नहीं आता; इसलिये सर्वप्रथम यथार्थ निर्णय करना चाहिए।

अरे ! यह अपने स्वभाव की स्वाधीनता की बात है, जबतक स्वभाव की रुचि नहीं होगी, तबतक स्वभाव की सन्मुखता नहीं होगी और आत्मा का हित भी नहीं होगा; इसलिए यह बात पहले रुचि में बैठना चाहिए।

ईश्वरस्वरूप भगवान आत्मा को अपनी ईश्वरता के साधन में किसी अन्य के पास पामरता प्रकट करना पड़े ह्न ऐसा कदापि नहीं हैं। अन्य द्रव्यों के कार्य में आत्मा मददगार नहीं हो सकता, प्रत्येक द्रव्य का कार्य पर से निरपेक्ष स्वतन्त्र है। उसे आत्मा जानता है; किन्तु कुछ करता नहीं।

इसलिये हे भव्य जीवों ! परद्रव्य में फेरफार करने की और स्वकार्य में अन्य साधन खोजने की चिन्ता छोड़कर स्वसंवेदनपूर्वक निज आत्मा का अनुभव करो। आत्मा की ज्ञानकिरण तो सदा प्रकट है, उस प्रकट पर्याय द्वारा आत्मा को जानो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

स्वयं के साधन द्वारा स्वयं का कार्य करते हुए जबतक पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती, तबतक राग के विकल्प आते हैं; किन्तु उन राग के विकल्पों को स्वरूप साधन में सहायक नहीं मानना चाहिए। परद्रव्य, निमित्त या राग की अपेक्षा के बिना ही ज्ञान द्वारा स्वयं अपने शुद्धस्वरूप को जाना जाता है। स्व-संवेदनरूप साधन से ही स्वयं का अनुभव हो जाता है।

(क्रमश:)

आओ अध्यात्म में डुबकी लगायें !

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार नामक ग्रन्थ पर परमपूज्य श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव ने अध्यात्मरस से सराबोर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव की मूल गाथाओं एवं संस्कृत टीका पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(गतांक से आगे .....)

अब द्वितीय गाथा की टीका पूर्ण करते हुये टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं –

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जन:
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुन:।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य य: पन्डितो
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि स: ।।9।।

मनुष्य कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है और फिर कभी धन रक्षा की बुद्धि करता है। जो पण्डित कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके निजात्मा में रत हो जाते हैं, वे ही वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

मुनिराज कहते हैं कि स्त्री आदि के विषयों में तो जगत के जीव अनादि से रत हैं ही, किन्तु वह तो संसार का कारण है; परन्तु जिनवर के मार्ग को पाकर जो अपने आत्मा में रत होते हैं, वे ही वास्तव में पण्डित हैं और वे ही मोक्ष पाते हैं।

पण्डित उन्हें कहते हैं कि जो जीव जिनवर के निरपेक्ष मार्ग को समझकर अपने आत्मा में रत होते हैं और वे ही वास्तव में मुक्ति को पाते हैं। आत्मा में रत होने को ही मार्ग कहा और उसी के फल में मोक्ष पाते हैं – ऐसा कहा।

इस भाँति मूलसूत्र में कथित मार्ग और मार्गफल का स्वरूप इस कलश में समझा दिया। अब आगामी गाथा में नियम शब्द के साथ सार शब्द क्यों लगाया है ? इसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहते हैं। गाथा मूलत: इसप्रकार है –

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं ।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं ।।3 ।।

नियम से जो करने योग्य हो, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही नियम है। विपरीत के परिहार के लिये (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्ध भावों के त्याग के लिये) सार शब्द जोड़ा गया है।

नियम अर्थात् मोक्षमार्ग कार्य है और उसका कारण जो त्रिकाल ध्रुव शुद्धस्वभाव है, वह कारणनियम है। वह कारणनियम त्रिकाल शुद्ध है। उसके आश्रय से प्रकट होनेवाला सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नियमसार है।

स्वभाव रत्नत्रय दो प्रकार का है। (1) त्रिकाल (2) वर्तमान। यहाँ मूलसूत्र में कार्यनियम की बात की है। उसमें से टीका में श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने कारणनियम की बात निकाली है। जो त्रिकालस्वभावरत्नत्रय है, वह तो कारणरूपनियम है और जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है वह कार्यनियम है। यह अपूर्व बात है। बहुत जीवों ने तो यह बात जीवन में कभी श्रवण भी नहीं की होगी। नियम अर्थात् निश्चितरूप से करने योग्य कार्य; और वह है रत्नत्रय, अत: रत्नत्रय ही नियम है। वही मोक्षमार्गरूपनियम है और उसके कारणरूप जो त्रिकालीस्वभाव है वह कारणरूपनियम है।

शरीरादि के कार्य तो आत्मा के हैं ही नहीं और उनसे आत्मा का धर्म भी नहीं होता तथा जो राग-द्वेषादि भाव होते हैं, वे भी आत्मा के वास्तविक कार्य नहीं है। सहजस्वभाव के आश्रय से जो निर्मल रत्नत्रय प्रकट होता है, वह ही आत्मा का निश्चयकार्य है और वही नियम अथवा मोक्षमार्ग है। उस कार्य के प्रकट होने की भूमिका क्या है ? सहज-अनन्तचतुष्टयमय जो शुद्ध-ज्ञानचेतना वह रत्नत्रय का कारण है अर्थात् वह कारणनियम है। यह कारणनियम आत्मा में त्रिकाल है। उसकी दृष्टि करके एकाग्र होने पर कार्य नियम प्रकट होता है।

शुद्धज्ञानमय जो त्रिकालस्वभाव है, उसके साथ सहजशुद्धचेतनापरिणाम भी त्रिकाल है। यहाँ जो शुद्धज्ञानचेतना परिणाम कहा है, वह त्रिकाल है। तीनप्रकार की चेतना में अन्तर के आश्रय से प्रकट होनेवाली ज्ञान चेतना तो कार्यरूप है; किन्तु यह शुद्धज्ञानचेतना परिणामस्वभाव अनन्तचतुष्टयात्मक त्रिकाल है, कारणरूप है, और इसी के आश्रय से कार्य प्रकट होता है।

मोक्ष का कारण रत्नत्रय है और वही नियम से करने योग्य कार्य है। उस रत्नत्रयरूपी कार्य का कारण स्वभावचतुष्टयमय सहजचेतना है, वह कारणनियम है। जो सहज परम

पारिणामिकभाव से स्थित स्वभाव अनन्तचतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना परिणाम है, वह नियम (कारणनियम) है।

इस परमपारिणामिक भाव में पारिणामिक शब्द होने पर भी वह उत्पाद-व्ययरूप परिणाम का सूचक नहीं है और पर्यायार्थिकनय का भी विषय नहीं है। यह पारिणामिकभाव तो उत्पादव्यय निरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

भरत क्षेत्र में इस नियमसार शास्त्र की जैसी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है, वैसी टीका अद्यतन अन्यत्र अलभ्य है। वन में रहकर, आत्मानुभव में निमग्न हो होकर यह टीका रची है। इस रूप में वे अपूर्व विरासत छोड़ गए हैं।

नियम से करने योग्य रत्नत्रय ही कार्य है, ऐसा मूलसूत्र में भगवान कुन्दकुन्द ने कहा है तथा टीका में उस कार्य के कारण की चर्चा की है। रत्नत्रयरूपी कार्य का कारण कौन है ? सहजपरमपारिणामिकभाव से स्थित ऐसा सहज अनन्तचतुष्टयात्मक शुद्धचेतना परिणाम कारण नियम है और वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

प्रश्न : यहाँ जो सहज पारिणामिकभाव से स्थित शुद्धचेतना परिणाम कहा है, वह सामान्यध्रुव है या विशेषध्रुव है ?

उत्तर : जिसप्रकार सामान्यध्रुव त्रिकाल है; उसीप्रकार उसका सहज परिणाम भी ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय से रहित है। त्रिकालध्रुव और उसका शुद्धवर्तमान भी ध्रुव; यह दोनों द्रव्यार्थिकनय के ही विषय हैं। परिणाम कहने पर भी उसमें उत्पाद-व्यय नहीं है। जैसे सहज परमपारिणामिक भाव त्रिकालध्रुव है, वैसे ही उसमें स्थित यह स्वभावचतुष्टयमय शुद्धचेतनापरिणाम भी ध्रुव है। वह कारणरूप है और अनन्त आत्माओं में त्रिकाल रहनेवाला है। संसारपर्याय या मोक्षपर्याय तो एक समय की उत्पाद-व्यय वाली है, उसमें तो फेरफार है; किन्तु त्रिकालध्रुव सामान्यस्वभाव और उसका ध्रुवपरिणाम, यह तो सभी जीवों के त्रिकाल एकरूप है।

इस शुद्धज्ञानचेतना परिणाम में परिणाम शब्द होने पर भी वह उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित नहीं करता तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है। यह शुद्धज्ञानचेतना परिणाम तो उत्पाद-व्यय निरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। वह स्वयं मोक्षमार्ग नहीं है; अपितु त्रिकाली है और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होता है।

जो मोक्षमार्ग प्रकट होता है, वह तो कार्य है और ध्रुवशुद्धचेतना परिणाम उसका कारण है तथा मोक्षमार्ग प्रकट हुआ, वह तो कारण और मोक्षदशा हुई, वह कार्य है।

इसतरह दो प्रकार से कारण-कार्य है। मोक्ष और मोक्षमार्ग ह्न यह दोनों तो उत्पाद-व्यय वाले हैं और पर्यायार्थिकनय के विषय हैं तथा द्रव्यार्थिकनय का विषय सहजज्ञानचेतना परिणाम है; उसको कारणनियम कहते हैं। त्रिकाल सदृश एकरूप ध्रुवपरिणाम का अवलम्बन लेने पर सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम प्रकट होता है, वह कार्य है। त्रिकालसामान्यध्रुव और उसका सदृशरूप वर्तमान ध्रुव परिणाम - यह दोनों कारणरूप नियम में समाविष्ट हो जाते हैं।

नियम के साथ सार शब्द कहा, उसमें से त्रिकाली कारण की बात निकाली है। कोई अन्य किसी बाह्य कारण को माने अथवा व्यवहार या राग को कारण माने तो उस मान्यता को निरस्त करने के लिये यहाँ त्रिकालीकारण सिद्ध किया है।

जिसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होता है, वह त्रिकालीकारण क्या है। इसे टीका में स्पष्ट किया है। करनेयोग्य कार्य वह नियम है ऐसा कहा तो उस कार्य का कारण कौन? त्रिकाल सहजपरमपारिणामिकस्वभाव और उसमें स्थित सहजचेतनापरिणाम ही कार्यनियम का कारण है। ऐसा कारणरूपस्वभाव प्रत्येक आत्मा में त्रिकाल विद्यमान है, उसका आश्रय करते ही कार्यनियमरूप मोक्षमार्ग प्रकट होता है। यह त्रिकाल परमपारिणामिक भाव ही तेरे मोक्षमार्ग का कारण है और वह तो तेरे पास सतत्-निरन्तर वर्त ही रहा है। इसके अलावा व्यवहार कारण के आश्रय से तेरा मोक्षमार्ग नहीं है।

देखो तो सही ! टीकाकार ने कैसी अद्भुत टीका की है। स्वयं आचार्य नहीं, किन्तु मुनि हैं, वन में रहकर सिद्धों के साथ बातें की हैं, परमपारिणामिकस्वभाव में स्थित सहजचेतनापरिणाम त्रिकाल है, वही कारण है और उसी के ही आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट करके सिद्धों ने मुक्ति प्राप्त की है।

अन्दर में कारणरूप शक्ति त्रिकाल पड़ी है। उसी के सेवन से मोक्षमार्ग प्रकट होता है। जैसे मोर के अण्डे में मोर होने की शक्ति पड़ी है, इसलिये उसी में से मोर होता है; वैसे ही चैतन्य की शक्ति में परमात्मदशा का सामर्थ्य भरा हुआ है, उसी में से परमात्मदशा प्रकट होती है। यहाँ तो सामान्य-विशेष दोनों को ध्रुव बताते हैं। त्रिकालसामान्यध्रुव पारिणामिक स्वभाव और उसका सहजचेतनारूप वर्तमानध्रुव परिणाम कारणनियम है और उसमें अनन्त मोक्षपर्यायों का सामर्थ्य भरा हुआ है। प्रथम अपनी ऐसी शक्ति की महिमा और विश्वास आना चाहिये कि परमात्मशक्ति मेरे में त्रिकाल भरी हुई है, कहीं बाहर से वह कार्यरूप से प्रकट होनेवाली नहीं है। **(क्रमशः)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

अहा ! इस मिथ्याभ्रान्ति के नाश का उपाय शुद्ध चैतन्य की यथार्थ दृष्टि, ज्ञान एवं आत्मरमणता है; इससे अज्ञान का नाश होकर साधकदशा प्रगट होती है तथा उस साधकदशारूप उपाय से उपेयरूप मोक्षदशा की प्राप्ति होती है। अपने में अपूर्ण शुद्धदशा का होना साधकभाव है और पूर्ण शुद्धदशा साध्यभाव है, मोक्ष है। त्रिकाली शुद्धद्रव्य तो अवलम्बन का- आश्रय का विषय है। यह स्वयं मोक्षमार्ग व मोक्ष नहीं है; किन्तु इसके आश्रय से मोक्ष व मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती है।

यद्यपि ऐसा बोला जाता है कि मोक्षमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है; परन्तु ऐसा कहना व्यवहार है। वस्तुतः तो मोक्ष का कारण कर्म-नोकर्म से भिन्न मोक्षस्वरूप निज आत्मा ही है; क्योंकि उसका पूर्ण आश्रय होने पर ही मोक्ष प्रगट होता है तथा इससे भी विशेष विचार करें तो जो मोक्ष की दशा प्रगट होती है, तत्समय की उस पर्याय की योग्यता ही मोक्षपर्याय (कार्य) का कारण है और उस समय जो पर्याय प्रगट हुई, वही मोक्षरूप कार्य है।

मैं निर्मलानन्द का नाथ चैतन्यमूर्ति प्रभु हूँ, मुझमें देह-मन-वाणी-कर्म-नोकर्म आदि कुछ भी नहीं है तथा एक समय में उत्पन्न हुआ विकार भी मेरा नहीं है। मैं तो अनन्त शक्तियों से भरपूर भगवान आत्मा हूँ - ऐसा मैं स्वयं साधकरूप एवं स्वयं ही सिद्धरूप से परिणत होता हूँ।

भले, साधकदशा उपाय हो; परन्तु एक समय की पूर्ण आनन्द की दशा-मोक्षदशा-परम वीतरागीदशारूप आत्मा स्वयं परिणमता है। जब मोक्षमार्ग की पर्याय भी मोक्षपर्याय की कारण नहीं है तो शुभराग के कारण होने की तो बात ही कैसे संभव है ?

जिसतरह नारियल के गोले की लाल छाल एवं कठोर नरेटी और नरेटी के ऊपर के जटा आदि गोले की सफेदी से भिन्न हैं; उसीप्रकार सफेदी समान भगवान आत्मा शरीर, द्रव्यकर्म, भावकर्म (पुण्य-पाप) एवं निर्मलपर्याय आदि से भिन्न है तथा अपनी अनन्त शक्तियों एवं गुणों से अभिन्न है - ऐसे अपने भगवान आत्मा के सन्मुख होकर अन्तर में एकाग्र होने से जो साधकदशारूप निर्मलरत्नत्राय की दशा प्रगट होती है, वह उपाय है और आत्मा की पूर्ण निर्मलदशा की प्राप्ति होना उपेय है। इसप्रकार मोक्षमार्ग की दशा और मोक्षदशारूप आत्मा ही स्वयं परिणमित होता है। राग व निमित्त के कारण वह सिद्धदशा नहीं होती।

भगवान आत्मा में एक अभाव गुण है, जो रागरूप विभाव के अभावस्वभाव से निर्मल परिणमन करता है। त्रिकाली शुद्ध ज्ञायक द्रव्य का आश्रय करने से जो शक्ति का परिणमन प्रगट होता है, वह उपाय है। उसमें पर के सहयोग की गरज/अपेक्षा नहीं करनी पड़ती; इसलिए हे भाई ! पर की आशा या अपेक्षा छोड़कर स्वसन्मुख हो, स्व का आश्रय कर। स्व के आश्रय से ही साधकदशा एवं स्व के आश्रय से ही साध्यदशा होती है, सिद्धदशा प्रगट होती है।

स्व-आश्रय से परिणत आत्मा जब अल्प या अपूर्ण शुद्ध परिणमन करता है, तबतक साधकदशा है तथा आत्मा का पूर्ण शुद्ध परिणमन साध्यदशा है। साधकदशा मोक्षमार्ग है, इसे चाहे संवर-निर्जरा कहें, मोक्षमार्ग कहें या उपाय कहें - सब एक ही बात है।

साधक व साध्य - दोनों दशायें स्व-आश्रय से ही होती हैं। अहा ! राग के विकल्प से हटकर अपने विज्ञानघनस्वभाव में लीनता करना साधुदशा है, इसे ही उपेय की अपेक्षा उपाय कहते हैं।

श्रीमद् राजचन्द्र के एक पत्र में ऐसा लिखा है कि - 'मुझमें दूसरों की अपेक्षा अधिक विशेषताएँ हैं' - यह मान्यता ही मूढ़पना है। लोक अभिनन्दनों की लम्बी पूँछ प्रदान करें तो इससे क्या ? इसमें फूल जाना तो सचमुच पूँछवाले पशु जैसी दशा है।

यहाँ तो यह कहते हैं कि तू स्वयं प्रभु है। तू स्वयं अपने उस स्वभाव की दृष्टि

करके अपना अभिनन्दन कर। वही सच्चा अभिनन्दन है। भले दुनिया जाने या न जाने इससे तुझे क्या ? तू स्वयं अपने अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप का अनुभव कर वही सच्चा अभिनन्दन है। आजतक अनन्त सिद्ध हुए, उनके कोई नाम भी नहीं जानता, उससे उनके आनंद में क्या फर्क पड़ता है। वे तो सदा ही निजानन्दलीन हुए अपने आप में अभिनन्दित हैं।

अहा ! अज्ञान ही परतंत्राता का कारण है। कर्म के कारण परतंत्राता नहीं हुई है। अपनी स्वयं की विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत आचरण से स्वयं ही अपने स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है। विपरीत श्रद्धान से पर के आधीन होकर पराधीन है; परन्तु अपनी गलती दूसरों पर डालने की इस जीव की अनादिकालीन बुरी आदत है, जो नीतिविरुद्ध है, स्पष्ट अन्याय है। यहाँ इसी अनीति के विरुद्ध स्वतंत्राता का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। कहते हैं कि कर्म तेरी भूल के कर्त्ता नहीं हैं। कर्म भिन्न है और तू भिन्न है।

हे आत्मन् ! तू स्वयं अखण्ड प्रताप से युक्तस्वातंत्रय से शोभायमान पूर्णानन्द का नाथ भगवान स्वरूप है। उसकी दृष्टि न करके अर्थात् उसका यथार्थ श्रद्धान एवं ज्ञान न करके स्वयं ही पराधीन हुआ है, किसी कर्म आदि ने तुझे पराधीन नहीं किया है। प्रवचनसार में कहा है कि - आत्मद्रव्य ईश्वरनय से स्वयं परतंत्राता भोगनेवाला है। स्वतंत्राता भी स्वयं से ही भोगता है और परतंत्राता भी स्वयं के अज्ञान से, अनजानेपन से ही भोगता है।

अनादि से ही मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रा से जीव स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है। पुण्यभाव में उपादेयबुद्धि-अल्पज्ञदशा में पूर्णदशा की भ्रान्ति - ऐसे मिथ्याभाव-विपरीतश्रद्धा के कारण जीव स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है। यह शरीर मेरा, पुण्य-पाप मेरे एवं स्त्री-कुटुम्ब-परिवार मेरे - ऐसी जो परद्रव्य एवं परभावों में ममत्वबुद्धि है तथा 'मैं शुद्ध चिन्मात्रा आत्मा हूँ' - ऐसा न मानकर 'मैं' मलिन हूँ, रागी हूँ, पुण्य-पापवाला हूँ' - ऐसी मान्यता मिथ्यादर्शन है तथा दया, दान, व्रत, तप, भक्तिआदि व्यवहार के शुभ- विकल्प से धर्म होता है - ऐसी मान्यता भी मिथ्यादर्शन है। 'शरीरादि परद्रव्य की क्रिया मैं करता हूँ - यह मान्यता भी मिथ्यादर्शन है। अहा ! इसप्रकार मिथ्यादर्शन से जीव अनादि से स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है।

(क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : आत्मा के पर्याय धर्म को स्वीकार न किया जाये तो क्या हानि है ?

उत्तर : आत्मा के पर्यायधर्म को माने जाने तो 'पर के आश्रय से अपनी पर्याय होती है' - ऐसी मिथ्या मान्यता छूट जाये और 'अपने द्रव्य के आश्रय से ही अपनी पर्याय होती है' - ऐसी सच्ची मान्यता हो जाये - ऐसा हो जाने पर 'परद्रव्य से मुझे लाभ-हानि होती है' - ऐसी मिथ्याबुद्धि नहीं रहे। जिसने पर से अपनी पर्याय में लाभ-हानि होना माना, उसने आत्मा के पर्याय धर्म को वास्तव में जाना ही नहीं। पर्याय धर्म अपना है, किसी अन्य वस्तु के कारण अपना पर्याय धर्म नहीं होता। यदि दूसरा पदार्थ आत्मा की पर्याय को करे तो आत्मा के पर्याय धर्म ने क्या किया ? यदि निमित्त से पर्याय का होना माना जाये तो आत्मा का पर्याय धर्म ही नहीं रहता। अपनी अनादि अनन्त पर्याय अपने से ही होती है - इसप्रकार यदि अपने पर्याय धर्म को न जाने तो ज्ञान प्रमाण नहीं होता।

प्रश्न : द्रव्य और पर्याय को भिन्न-भिन्न सिद्ध करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : त्रिकाली द्रव्य और प्रकट पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न धर्म अस्तिरूप हैं। उन दोनों धर्मों का परस्पर भिन्न अस्तित्त्व सिद्ध करना ही प्रयोजन है।

प्रश्न : ज्ञान गुण में जितने अविभागी प्रतिच्छेद है, उतने अविभागी प्रतिच्छेद सभी गुणों में है क्या ?

उत्तर : हाँ; जितने अविभागी प्रतिच्छेद एक ज्ञान गुण में है, उतने ही श्रद्धा-चारित्र-वीर्यादि सभी गुणों में है। जिसका भाग करने पर दूसरा भाग न हो सके ह्न ऐसे अविभागप्रतिच्छेद एक गुण में अनन्त हैं; ये अनंत अविभागप्रतिच्छेद केवलज्ञान होने पर पूर्ण प्रकट होने पर भी ज्ञान गुण में से घटते नहीं है ह्न ऐसा ही स्वभाव है। यह बहुत सूक्ष्म बात है। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य गुण कुछ जानते नहीं है; इसलिये उन गुणों के अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम होते होंगे - ऐसा नहीं है।

प्रश्न : परिणामी निश्चय से अपने परिणाम का कर्त्ता है; तथापि पूर्व पर्याय का

व्यय कर्त्ता है – यह कथन किसप्रकार है ?

उत्तर : वास्तव में तो उत्पाद की पर्याय का कर्त्ता उत्पाद ही है, किन्तु अभेद करके उपचार से परिणामी को कर्त्ता कहा गया है; परन्तु द्रव्य तो परिणमता ही नहीं, वह तो निष्क्रिय है; पलटनेवाली तो पर्याय है। व्यय को उत्पाद का कर्त्ता कहना भी व्यवहार ही है। षट्कारक का परिणाम ध्रुव और व्यय की अपेक्षा रहित स्वयं सिद्ध उत्पाद होता है।

प्रश्न : शास्त्र में पर्याय को अभूतार्थ क्यों कहा है, क्या उसकी सत्ता नहीं है?

उत्तर : त्रिकाली स्वभाव को मुख्य करके भूतार्थ कहा और पर्याय को अभूतार्थ कहा अर्थात् पर्याय है नहीं – ऐसा कहा। वहाँ पर्याय को गौण करके ही 'नहीं है' ऐसा कहा; परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना कि पर्याय सर्वथा है ही नहीं। इसी भाँति सम्यग्दृष्टि को राग नहीं, दु:ख नहीं – ऐसा कहा; परन्तु इससे ऐसा मत समझना कि वर्तमान पर्याय में राग, दु:ख सर्वथा है ही नहीं। पर्याय में जितना राग है, उतना दु:ख भी अवश्य है जहाँ शास्त्र में ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि की राग या दु:ख नहीं है सो वह तो दृष्टि की प्रधानता से कहा है; किन्तु पर्याय में जितना आनंद है, उतना भी ज्ञान जानता है और जितना राग है, उतना दु:ख भी साधक को है; ऐसा ज्ञान जानता है। यदि वर्तमान पर्याय में होनेवाले राग व दु:ख को ज्ञान न जाने तब तो धारणा ज्ञान में भी भूल है। सम्यग्दृष्टि के दृष्टि का जोर बताने के लिये ऐसा भी कहा है कि वह निरास्रव है, किन्तु यदि आस्रव सर्वथा न हो तो मुक्ति हो जाना चाहिये।

कर्त्ता–कर्म अधिकार में ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि के जो राग होता है, उसका कर्त्ता पुद्‌गल कर्म है, आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है; तथा प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि ज्ञानी के जो राग होता है, उसका कर्त्ता आत्मा है; राग का अधिष्ठाता आत्मा है। फिर भी एकान्त मानें कि ज्ञानी राग का, दु:ख का कर्त्ता भोक्ता नहीं है तो वह जीव नय विवक्षा को नहीं समझने के कारण मिथ्यादृष्टि है।

एक पर्याय जितना अपने को मानना भी मिथ्यात्व है। तो फिर राग को अपना मानना, शरीर को अपना मानना, माता–पिता धनादि को अपना मानना तो महान मिथ्यात्व है। अहाहा ! अपने को बहुत बदलना पड़ेगा। अनेक प्रकार की मिथ्यामान्यताओं को छोड़कर ही आत्मसन्मुख हो सकोगे। ●

समाचार दर्शन –

दो-दो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न

१. कुरावली–मैनपुरी (उ.प्र.) : यहाँ 1008 श्री आदिनाथ जिनालय, कुरावली द्वारा शनिवार, दिनांक 8 नवम्बर से शुक्रवार, दिनांक 14 नवम्बर, 2003 तक 1008 श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर 1008 श्री नेमिनाथ भगवान की मनोहारी प्रतिमा को गजरथ महोत्सवपूर्वक विराजमान किया गया।

इस मंगलमय प्रसंग पर **108 आचार्य श्री धर्मभूषणजी महाराज के परम शिष्य 108 मुनि श्री सम्यक्त्वभूषणजी महाराज** के आध्यात्मिक प्रवचनों का समागम प्राप्त हुआ तथा साथ ही पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, डॉ. योगेशकुमारजी जैन अलीगंज, पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री नागपुर, पण्डित अशोककुमारजी लुहाड़िया अलीगढ़, पण्डित अशोककुमारजी जैन सिरसागंज आदि के मार्मिक प्रवचनों का लाभ भी आगन्तुक महानुभावों को प्राप्त हुआ।

पंचकल्याणक महोत्सव की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा विधि बाल ब्र. पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियाधांना के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री के कुशल निर्देशन में पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. अरविन्दजी जैन करहल, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित अभिनवजी मोदी मैनपुरी, पण्डित नवीनकुमारजी शास्त्री फिरोजाबाद, पण्डित अभिनयकुमारजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित विपिनकुमारजी शास्त्री फिरोजाबाद, पण्डित संतोषकुमारजी साहु अबंड ने सम्पन्न करायी।

इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में दिल्ली से नेमि–राजुल नाटक का सुन्दर प्रस्तुतिकरण किया गया। तथा संगीतकार रवीन्द्र जैन, मुम्बई द्वारा भक्ति संध्या आयोजित की गई।

मोक्ष कल्याणक के अवसर पर ललितपुर से आये हुये तीन मंजिल रथ पर गजरथ महोत्सव का आयोजन किया गया, जो सभी के लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा।

पण्डित टोडरमल संगीत सरिता, जयपुर तथा सीमंधर संगीत सरिता छिन्दवाड़ा द्वारा प्रासंगिक भजनों के प्रस्तुतिकरण द्वारा जनसामान्य को भक्ति रस का आस्वादन कराया गया।

सम्पूर्ण आयोजन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, मैनपुरी का सक्रिय सहयोग रहा।

दिगम्बर जैनधर्म के इस लोकोत्तर महायज्ञ में दिल्ली, कानपुर, भोपाल, इलाहबाद, आगरा, फिरोजाबाद, भोगांव, कायमगंज, अलीगढ़, भिण्ड, इटावा, सिरसागंज, करहल, एत्मादपुर, एटा, पालनपुर, लखनऊ, घिरोर, अलीगंज, अजमेर आदि स्थानों से अनेक साधर्मी पधारे। जिन्होंने अत्यन्त उत्साह व भक्तिपूर्वक सम्पूर्ण कार्यक्रमों का लाभ लिया।

२. सहारनपुर (उ.प्र.) : यहाँ कविवर सन्तलालजी की धर्मनगरी में आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की सत्प्रेरणा से प्रेरित दिग. जैन मुमुक्षु समाज एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

के अथक् प्रयासों से श्री चौबीस तीर्थंकर जिनालय एवं परमागम मंदिर का निर्माण किया गया।

नवनिर्मित जिनमंदिर हेतु मूलनायक भगवान नेमिनाथ का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिनांक 18 से 24 नवम्बर, 03 तक श्री दि.जैनाचार्य कुन्दकुन्द परमागम मंदिर ट्रस्ट के अन्तर्गत सम्पन्न हुआ।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सम्पूर्ण कार्यक्रम बाल ब्र. पण्डित अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना के प्रतिष्ठाचार्यत्व एवं बाल ब्र.पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुये।

इस अवसर पर देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर ने अपने अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों के माध्यम से समाज को संदेश दिया कि 'यह पंचकल्याणक महोत्सव कानजीस्वामी का नहीं है, ये जयपुर, सोनगढ़ या अलीगढ़वालों का भी नहीं है; बल्कि यह पंचकल्याणक तो भगवान नेमिनाथ का है; अत: हम अपने राग-द्वेषरूपी कषायों के वशीभूत होकर कहीं इस मनुष्य भव में ऐसे महोत्सव के लाभ से वंचित न हो जायें।' उन्होंने अपने प्रवचनों में तीर्थंकर देव के समवशरण एवं वीतराग भगवान की वीतरागवाणी का महत्त्व भी बताया।

इसके अतिरिक्त पण्डित प्रकाशचन्दजी जैन ज्योतिर्विद मैनपुरी, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया अलीगढ़, पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री जेवर, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित ऋषभजी शास्त्री ललितपुर, पण्डित अभिनयजी जैन जबलपुर आदि विद्वानों का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ।

मंच संचालन पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा ने किया।

दिनांक 17 नवम्बर को प्रतिष्ठा महोत्सव का ध्वजारोहण डॉ. जे. डी. जैन परिवार, प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री प्रमोदजी जैन, प्रतिष्ठामंच का उद्घाटन श्री जितेन्द्रजी सर्राफ तथा यागमण्डल विधान का उद्घाटन श्री सी.एस. जैन देहरादून ने किया। महोत्सव में नेमिकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती सुधाजी एवं श्री राजकुमारजी जैन, सहारनपुर को मिला।

इस अवसर पर लगभग 70 हजार रुपये का सत्साहित्य एवं 40 हजार रुपये के सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे।

सम्पूर्ण महोत्सव में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर, श्री कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई, तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़ एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा मेरठ का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। **ह्न महामंत्री, संदीपकुमार जैन**

नागपुर में धर्म प्रभावना

नागपुर (महा.) : दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल नागपुर की अनेक वर्षों की मांग के फलस्वरूप यहाँ भगवान महावीर दिग. जैन मंदिर, इतवारी में बाल ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर पधारे। आपके द्वारा दिनांक 5 नवम्बर से 14 नवम्बर 2003 तक गुणस्थान विवेचन पर प्रवचन हुये। प्रवचनों में मुख्यत: चतुर्थ एवं पंचम गुणस्थान की चर्चा की गई। इसी अवसर पर अनेक लोगों द्वारा कण्ठस्थ किये गये विषयों को ब्र. यशपालजी ने सुना तथा उन्हें प्रोत्साहन स्वरूप पारितोषिक भी प्रदान किया।

आयोजनों हेतु सम्पर्क करें

नागपुर (महा.) : श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल ट्रस्ट, नागपुर के अन्तर्गत श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक विद्वान पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री, नागपुर (जेवर) द्वारा तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की अनेक गतिविधियाँ संचालित हो रही है। अबतक उनके दो वर्ष के कार्यकाल में अनेक स्थानों पर बाल संस्कार शिविरों, शिक्षण-शिविरों में कक्षा, प्रवचन एवं पूजन-विधानादि कार्यक्रम आयोजित किये जा चुके हैं एवं हो रहे हैं।

तत्त्वप्रचार की सभी गतिविधियों में कार्य करने की आपकी शैली अत्यन्त सरलतापूर्ण होने से सर्वत्र ही आपके कार्य की प्रशंसा हो रही है।

यदि आप भी अपने यहाँ कोई शिक्षण-शिविर, बाल संस्कार-शिविर, शिलान्यास, पूजन-विधान, प्रवचन, कक्षा आदि का आयोजन करना/कराना चाहते हों तो हमसे निम्न पते पर सम्पर्क कर सकते हैं। अहिन्दी भाषी भी इन आयोजनों का लाभ ले सकते हैं। ध्यान रहें अनुकूलता के आधार पर ही स्वीकृति प्रदान की जा सकेगी। **पता ह्न** श्री कुन्दकुन्द दिग.जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

C/o श्री महावीर दिगम्बर जिन मन्दिर, नेहरू पुतला, इतवारी, नागपुर - 02 (महा.)

फोन ह्न (0712) 2766369, 2763105

सत्साहित्य नि:शुल्क मंगा लें

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम कृति **समयसार का सार** नामक ग्रन्थ पक्की बाइण्डिंग, पृष्ठ-400, कीमत-25/-रुपये श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, मुम्बई की ओर से मुनिराजों, ब्रह्मचारियों, मंदिरों, संस्थाओं, वाचनालयों एवं सद्गृहस्थों को स्वाध्यायार्थ नि:शुल्क भेंट की जा रही है। इच्छुक महानुभाव डाकखर्च के लिये 6/-रु. (अक्षरेण छह रुपये) के फ्रेश डाक टिकिट भेजकर नि:शुल्क मंगा लेवें। ध्यान रहे, टिकिट भेजने की अंतिम तिथि 28 फरवरी, 04 है।

पता– प्रबंधक, नि:शुल्क साहित्य वितरण विभाग,

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.)

प्रवचनसार अनुशीलन के सन्दर्भ में अभिमत

आदरणीय डॉ. साहब की सारस्वत लेखनी से समयसार अनुशीलन का कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ, इसकी अत्यधिक प्रसन्नता है। अब आपने प्रवचनसार अनुशीलन का कार्य प्रारंभ किया है, जो **प्रशंसनीय और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण** हैं। स्वामीजी कहते थे की सीमंधर स्वामी के पास से लौटकर भरतक्षेत्र में आने पर आचार्य कुन्दकुन्द ने सर्वप्रथम प्रवचनसार की रचना की होगी; क्योंकि इस ग्रन्थ के अवलोकन से अनायास ही सर्वज्ञ परमात्मा का स्मरण हो आता है। आप आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन, कविवर वृंदावनदासजी तथा पूज्य स्वामीजी आदि ज्ञानी महात्माओं के सहयोग से तथा अपनी विवेचक प्रज्ञा से प्रसूत इस अनुशीलन को भी वरद लेखनी द्वारा पूर्णाहूति दें ह्न यही मंगल कामना है। **ह्न राकेशकुमार शास्त्री, नागपुर**

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा - कार्यक्रम (सत्र-2003-2004)

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
शुक्रवार 30 जनवरी 2004	1. बालबोध पाठमाला भाग1 (बालबोध प्रथम खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग 1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग1 (प्रवेशिका प्रथम खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (बरैयाजी) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
शनिवार 31 जनवरी 2004	1. बालबोध पाठमाला भाग 2 (बालबोध द्वितीय खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग 2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 2 (प्रवेशिका द्वितीय खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष) 10. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष)
सोमवार 02 फरवरी 2004	1. बालबोध पाठमाला भाग 3 (बालबोध तृतीय खण्ड) मौखिक 2. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 3 (प्रवेशिका तृतीय खण्ड) 3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट – (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय प्रात: 9 से शाम 5 बजे के बीच में कभी भी सैट किया जा सकता है।
(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।
(3) किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।
(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग 1 व 2 की परीक्षायें मौखिक लेवें। शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।